अध्यात्म शक्ति ही एकमात्र निधि है

— स्वामी शिवानन्द सरस्वती

मनुष्य-जीवन ज्ञान और आत्मोत्थान की एक पाठशाला है। भगवान इस पाठशाला के अदृश्य शिक्षक हैं जो अपने महान पुत्रों और प्रकृति के द्वारा मनुष्य को परमानन्द की प्राप्ति का रहस्य और स्रोत बता देते हैं। अतः जीवन इन पाठों से भरपूर है। जो व्यक्ति इनके अनुसार कार्य करता है, वह मुक्ति और प्रकाश पाता है, और जो इनको अपने अज्ञान के कारण भूलता है, उसे मिलता है दुःख, और केवल दुःख। आज अन्धकार से मुक्त होकर विश्व आगे जा रहा है, तथा दुःख और व्यथा के बादल सर्वत्र छाये हैं, इससे स्पष्ट है कि इसने विलास के कारण जीवन के इन उपयोगी पाठों को भुला दिया है।

इतिहास साक्षी है कि, शक्ति का दुरुपयोग असीम दुःख को जन्म देता है। हिंसा और घृणा से नाश और व्यथा का निर्माण होता है। स्वार्थान्ध होने के कारण मनुष्य को अभी अपने लालच पर रोक लगाना नहीं आया, अपनी महत्वाकांक्षाओं पर नियंत्रण रखना उसने नहीं सीखा, अपने पड़ोसी से प्रेम करना वह नहीं जानता तथा अपने क्रोध को दया में और बल को न्याय में बदलना उसने नहीं सीखा। भौतिक प्रगति के कारण जहां बलवान ने निबल और नम्र को अपने अधिकार में करना आरम्भ किया, वहीं वह स्वयं अपनी भौतिक शक्ति के कारण स्वयं अपना दास हो गया। विज्ञान के आगे निर्माण के बदले संहार के लिए अपनी झोली मत फैलाइए। अपने आपको ढूंढ़िए। आप में ही सभी शक्तियाँ वास करती हैं और वे सब निर्माण की महानतम शक्तियाँ हैं।

बहुत पहले से जीवन का पाठ रहा है—घृणा से घृणा को दबाया नहीं जा सकता, यह केवल प्रेम से जीती जा सकती है। महान बुद्धदेव का जन्म व्यर्थ नहीं गया है। अध्यात्म शक्ति ही एकमात्र निधि है, शेष पृथ्वी पर की सारी निधियाँ व्यर्थ हैं। आप भगवान और शैतान की एक ही साथ भक्ति नहीं कर सकते। परन्तु आज शैतान मानव के हृदय में विराजमान है। आदिगुरु शंकराचार्य ने जय-घोष किया था, "माया असत्य है। परम सत्य को पाने का प्रयत्न करो।"

वर्तमान व्यावसायिक और राजनीतिक सिद्धांत—जो विकृत होकर संग्रह, शोषण, अनधिकार और प्रभुत्व के रूप धारण कर चुके हैं, माया का एक ऐसा इन्द्रजाल है, जिसमें मानव सिर के बल गिर रहा है। नवनिर्माण की मंत्रणाएँ और घोषणाएं युद्ध-अस्त्रों और शक्तिशाली संहार के ही अन्य रूप हैं। बन्द कीजिए— पतन के गर्त्त से बचने के लिए इसे बन्द कीजिए।

यदि आप रेत, घास-फूस और ईंटों की नींव पर सुन्दर प्लास्टर, रंगीन टाइलों, आधुनिक नवीन रोशनदानों, आकर्षक द्वार और खिड़कियोंवाले विशाल भवन का निर्माण करेंगे, तब इस प्रासाद का गिर जाना अवश्यभावी है। आधुनिक सभ्यता के प्रासाद का निर्माण स्वयं मनुष्य ने किया है। व्यक्ति इस प्रासाद की ईंट है जिसने अपने स्वार्थ और लोभ के कारण अधार्मिक और नास्तिक का रूप धारण कर लिया है। अतः अपने इस बाह्य आडम्बरपूर्ण वैभव

(शेषांश पृष्ठ ८ पर)

हिंसा के बाद क्या ?

—आचार्य विनोबा भावे

सदाचार की दृष्टि से कोई सिद्धान्त अच्छा है अथवा बुरा, और व्यवहार की दृष्टि से सुविधाजनक है अथवा असुविधाजनक, इसको निश्चित करने के लिये जो माप आचार-शास्त्र में प्रयुक्त होता है, वह यह है कि उसका व्यवहार सभी मनुष्यों पर लागू करके देखा जाय कि उसका परिणाम क्या होगा। यदि इस प्रकार प्रयुक्त कोई सिद्धान्त लुप्त हो जाता है अथवा खरा नहीं उतरता अथवा स्वयं नष्ट हो जाता है, तो निःसन्देह उसे सदाचार और व्यवहार दोनों दृष्टियों से व्यर्थ मानना चाहिये।

यथा— यदि यह निर्णय करना हो कि भीख माँगना अच्छा है अथवा बुरा, तो हमें देखना चाहिये कि यदि प्रत्येक व्यक्ति भीख माँगने लगे तो क्या होगा? उस समय यही ज्ञात होगा कि इस प्रकार की भिखमंगी असम्भव है, उस समय तो वह स्वतः नष्ट हो जायगी। इसलिये भिखमंगी अच्छी बात नहीं है।

लेकिन केवल सैद्धान्तिक निर्णय के निमित्त हिंसा के साथ इस प्रकार का प्रयोग कौन करेगा? यूरोप के राष्ट्र, जो बढ़ी हुई बुराई को कम करने के सिद्धान्त को लेकर तेजी के साथ हिंसा की ओर बढ़ रहे हैं, अनजाने ही हिंसा अच्छी है अथवा बुरी, इसको आचार-शास्त्र की कसौटी पर सिद्ध करने का साहसिक कार्य कर रहे हैं।

आज वैयक्तिक अथवा गुट की लड़ाई अथवा छिटफुट छोटी-मोटी लड़ाइयों की आवश्यकता नहीं रह गई है। आज यदि लड़ाई होनी ही है तो वह या तो सम्पूर्ण युद्ध होगा या होगा ही नहीं। सदा प्रयोग करनेवाले यूरोप के बहादुर लोगों ने, जो प्रयोग करने में लगे हुए हैं, कोई तीसरा रास्ता खुला छोड़ा ही नहीं है।

शायद यही होना बच रहा है कि जो राष्ट्र समग्र युद्ध में पराजित हो, वह स्वतः समग्र युद्ध में रत होने की अपेक्षा अन्य अनेक राष्ट्रों की सहायता ले, और सारे महाद्वीप अथवा राष्ट्र-समूह को उसमें झोंक दे। किन्तु यह क्रम कितना भी विस्तृत किया जाय, अब उसके अधिक आगे बढ़ने की गुँजाइश नहीं रह गयी है।

चरम सीमा तक हिंसा का प्रयोग हो चुकने पर हिंसा के लिये केवल यही बच रहता है कि वह अपने आप को नष्ट कर दे और अपना स्थान अहिंसा को दे दे। इस निश्चय पर न केवल बुद्धिमानों ही का लोकमत है, वरन् सामान्य जनता भी पहुँची है या उसकी ओर बढ़ रही है। ——

(पृष्ठ ७ का शेषांश)

के होते हुए भी अन्दर से सब सड़ा हुआ निर्माण, घृणा और कामना के कारण ढह गया है।

हर एक व्यक्ति से मैं कहता हूँ, "अपना पुनर्निर्माण कीजिए।" स्वयं आदर्श मानव बनने का प्रयत्न कीजिए, तब शीघ्र ही संसार में नई सभ्यता जन्म लेगी। आज कल अणुशक्ति को अपने नियंत्रण में करने की तथा कथित विजय जो मानव को मिली है, वह भस्मासुर का वरदान बन जायगा, जिससे वह स्वयं भस्म हो गया था। चेतिये! जाग जाइए!! भगवान ने प्रत्येक पतित को पावन एवं गौरवपूर्ण बनाने का वचन दिया है, यदि वह अपने आचार-विचार को सुधार ले।

भगवान करे कि भौतिकवाद के ऊपर आध्यात्मवाद और दानवी शक्ति के ऊपर दैवी शक्ति के विजयार्थ मानव समाज जाग जाय। —

अस्पृश्यता

—श्री शैलेन्द्र सहाय

देखिए ! चौंकिये नहीं, मैं कहता हूँ, "अस्पृश्यता पाप नहीं, यह एक महापुण्य है, शाश्वत है और सत्य है।"

आप शायद सोचते हैं और अवश्य ही सोचते होंगे कि यह गधा कहाँ से रेंक उठा ? कैसी ऊल-जलूल और भद्दी बकवास कर रहा है। कह लीजिए—इसका आपको जन्मसिद्ध अधिकार है। जब अरस्तू और सुकरात के भी तर्क तत्कालीन लोगों में कुछ को अप्रिय और असंगत तथा अनर्गल प्रलाप प्रतीत होते थे, तो मेरे-जैसे क्षुद्र बुद्धि की क्या बिसात ! किन्तु बिसात यही है, कि मैं अपना प्रलाप जारी रखूँगा कि अस्पृश्यता भी आपका जन्मसिद्ध अधिकार है। पुरातन बड़प्पन के जीर्णावशेष तो कम से कम अवश्य मेरी पीठ ठोक कर कह रहे होंगे, "वाह वाह ! क्या पते की बात कही तुमने !"

मैं आपसे पूछता हूँ, "किस बुद्धिमान वैद्य ने और कब आपको परामर्श दिया कि तुम निरन्तर गलित कुष्ट का संसर्ग करो ? किस दार्शनिक ने बताया कि साँप का स्पर्श करो ? किस गुरु ने आपको सिखाया कि गन्दी चीजों के पास जाओ ?" आपका उत्तर केन्द्रीभूत होकर इस तथ्य का प्रतिपादन करेगा कि अस्पृश्यता मानवीय आचार का एक प्रबल अंग है।

यदि जरा ठंडे दिमाग से सोचा जाय तो पता चलेगा कि क्या दुनिया में सभी चीजें स्पृश्य ही हैं; अस्पृश्य कोई नहीं ? यदि मैं यह कहूँ कि सभी चीजें, जो स्थूल हैं, किसी न किसी के लिए स्पृश्य हैं और प्रायः सभी सूक्ष्म चीजें अस्पृश्य, तब यह समझा जायगा कि मैं भी ठंडे दिमाग से सोचने का प्रयास कर रहा हूँ ! खैर ! कहना यह चाहता हूँ कि स्थूल पदार्थों में भी कुछ अस्पृश्यता के पात्र हैं। पर वे वही नहीं हैं, जिन्हें केवल उनकी गन्दगी और उसकी सफाई के फलस्वरूप अस्पृश्य समझा जाता रहा है। आजकल कानून और दण्ड के भय से सभी अस्पृश्यता-निवारण का बाह्यतः समर्थन करते हैं। परन्तु इनमें कुछ ऐसे लोग भी बच रहे हैं, जिनके मस्तिष्क पर पुरानी संस्कृति की अमिट छाप अंकित है। मैं यह कहने में जरा भी संकोच नहीं करूँगा कि यह संस्कृति की छाप नहीं, अपितु उनके सांस्कृतिक विचारों पर जमी हुई काई है और इसे साफ करने पर ही इसका प्रखर तेज चमकेगा।

आप मन ही मन घृणा करते हैं उनसे जो आपके गलीज को अपने सर पर धारण कर आपको आपकी तथाकथित सफाई के योग्य बनाते हैं। ये, जिन्हें आप अस्पृश्य समझते हैं, परम पूज्य हैं और साथ ही वास्तविक रूप से अस्पृश्य हैं उस शरीर द्वारा जिसमें काले विचारों का वास है। मैं पूछता हूँ, "क्या इन निरीहों से घृणा करने के पूर्व आप अपने खाद्यान्नों से नहीं घृणा करते और सबसे पहले अपनी स्वच्छ काया को अस्पृश्य नहीं समझते, जो उन सारी गलीजों को निरन्तर उत्पन्न करते हैं ?"

कौन कहता है अस्पृश्यता पाप है ? आप अपने मनोभावों में अस्पृश्यता को प्रधानतम स्थान दीजिए। कदाचित यह आपके और सारे समाज के लिये वरदान हो ! किन्तु पात्र विशेष का तो ध्यान रखना ही होगा।

घृणा कीजिए और खुलकर अस्पृश्य समझिए कोई आपको रोकने नहीं आयगा; पर केवल उन्हें जो शोषक हैं, जिनका सामाजिक रूप विकृत है, जो स्वार्थी हैं तथा जो मानवता के कलंक हैं, न कि उन्हें जो समाज की गन्दगी को अंगीकार कर सफाई का संचार करते हुए वास्तव में सबसे उत्कृष्ट सेवक हैं।

——

अपने आप को पहचानो !

—संत इमाम ग़ज़ाली, जन्म १०५८ ई०, मृत्यु १११९ ई०

[प्रस्तुत रचना आज से करीब साढ़े आठ सौ वर्ष पहले के एक ऐसे ईरानी संत की है जो भारत के सुप्रसिद्ध जुलाहा संत कबीर की तरह ही एक जुलाहा था।

ठीक ही कहा गया है कि संतों का उपदेश देश-काल से विमुक्त रहता है।

अगले अंक में हम इनका पूरा परिचय आपको देंगे।

अभी इतना जान लीजिये कि आपका पूरा नाम हज्जतुल इस्लाम अबू हमीद मुहम्मद इब्न-मुहम्मद-अल्-तूसी था।

जितना बड़ा आपका नाम है उससे कहीं बड़ा आपका काम और आपके काम से कहीं बड़ी आपकी साधना थी।

वैसे आप इमाम गज़ाली के नाम से प्रसिद्ध हैं और इतने प्रसिद्ध हैं कि अंगरेजी और फ्रेंच जैसी समुन्नत भाषाओं में भी इनकी रचनाओं के अनुवाद प्राप्य हैं। - सम्पादक]

याद रखो, अपने-आपको पहिचानना ही श्रीभगवान को पहिचानने की कुञ्जी है। इसी विषय में महापुरुष ने भी कहा है कि जिसने अपने को पहिचाना है उसने निःसन्देह अपने प्रभु को भी पहिचान लिया है। तथा प्रभु भी कहते हैं कि मैंने अपने ही लक्षण जीवों के हृदय में प्रकट किये हैं जिससे कि वे अपने को पहिचान कर फिर मुझे भी पहिचानें। सो, भाई ! तेरे आस-पास ऐसा और कोई नहीं है जिसे पहिचानना तेरे लिये अपने-आपको पहिचानने से अधिक आवश्यक हो। पहले जब तू अपने को भी नहीं पहिचानता तो और किसी को कैसे पहिचानेगा ? यदि तू कहे कि मैं अपने को तो पहिचानता हूँ, तो तेरा यह कथन ठीक नहीं, क्योंकि जिस रूप में तू अपने को पहिचानता है तेरी वह पहिचान श्रीभगवान को पहिचानने की कुञ्जी नहीं है। तू जो अपने को हाथ, पाँव, त्वचा एवं मांस आदि से युक्त स्थूल शरीर समझता है तथा भूख होने पर आहार की इच्छा करनेवाला, क्रोधित होने पर लड़ने-झगड़नेवाला और कामातुर होने पर भोगवासना से व्याकुल और उसी संकल्प में डूब जानेवाला जानता है, सो इस प्रकार को पहिचान में तो पशु भी तेरे समान हैं। अतः तुझे यह वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना चाहिये कि मैं क्या वस्तु हूँ, कहाँ से आया हूँ, किस जगह जाऊँगा, किस निमित्त से मैं संसार में आया हूँ, किस कार्य के लिये भगवान ने मुझे उत्पन्न किया है, मेरी भलाई किस में है और क्या मेरा दुर्भाग्य है ? इसके अतिरिक्त यह भी देखना चाहिये कि तेरे भीतर जो दैवी और पाशविक वृत्तियों का संघटन हुआ है उनमें किस प्रकार की वृत्तियों की प्रबलता है। तथा साथ ही यह भी पहिचान कि तेरा अपना स्वभाव क्या है और पर स्वभाव क्या है ?

जब तू भली प्रकार इन सब बातों को पहिचान लेगा तो तेरी इनमें श्रद्धा भी होगी, क्योंकि विभिन्न जीवों की भलाई, पूर्णता और आहार भी भिन्न-भिन्न

हैं। पशुओं की भलाई और पूर्णता इसी में है कि उन्हें अच्छी तरह सोने और खाने-पीने की सुविधा मिल जाय तथा दूसरे पशुओं को लड़ाई में परास्त करने की शक्ति हो। सो, यदि तू अपने को पशु समझता हो तो दिन-रात उदरपूर्त्ति और इन्द्रियपोषण के लिये ही पुरुषार्थ कर। सिंहों की पूर्णता दूसरे जीवों को फाड खाने और क्रोधाविष्ट होने में ही है तथा भूत-प्रेत हैं तो छल-कपट के द्वारा ही अपना आतंक स्थापित करते हैं। सो, यदि तू सिंह या भूत-प्रेत है तो इसी प्रकार के स्वभाव में स्थित रह। ऐसा ऐसा होने पर ही तेरा पूर्णता सिद्ध होगी। देवताओं की भलाई और पूर्णता तो श्री भगवान का दर्शन प्राप्त करने में है और यही उनका आहार भी है। भोग-वासना और क्रोधादि तो पशुओं के स्वभाव में हैं। ये देवताओं को छू भी नहीं सकते।

इसलिये यदि मानवयोनि में जन्म लेने के कारण तुझे जन्मतः देवभाव का अधिकार प्राप्त हुआ है तो यही पुरुषार्थ कर कि भगवान के दरबार तक पहुँच सके। इसके लिये अपने को भोगवासना और क्रोधादि से दूर रख और इस भेद को याद रख कि भगवान ने तेरे लिये जो पाशविक स्वभाव और वृत्तियों की रचना की है वह इसलिये है कि तेरा उन पर पूर्ण अधिकार हो और तुझे जिस मार्ग द्वारा अपने गन्तव्य स्थान पर जाना है उसमें तू इन्हें अपने अधीन रखकर चले, स्वयं कभी इनके अधीन न हो। अतः जिस प्रकार घोड़े और शस्त्रों पर अधिकार रखकर शिकार खेला जाता है उसी प्रकार इन पाशविक स्वभावों और वृत्तियों पर सवारी गाँठ कर इन्हीं के द्वारा तू देवभावरूप अपने लक्ष्य को वेध। जितने समय तुझे जीना है इसी कार्य को सिद्ध करने में अपनी आयु लगा दे। इस प्रकार जब तेरी भलाई होगी और तुझमें दैवी स्वभाव का आविर्भाव होगा तो तू भगवान को पहिचानने के लिये प्रवृत्त होगा और फिर तुझे मुक्ति मिल जायगी।

अच्छा तो, यह भगवान की पहिचान कैसी है? यही संतजनों के स्थित होने का स्थान है। यह अत्यंत सूक्ष्म वस्तु है। दूसरे लोग तो स्वर्ग को ही सर्वोत्कृष्ट सुख समझते हैं, किन्तु संतों का सुख तो श्रीभगवान की शरण में ही है। जब तू ऐसा समझेगा तभी अपने को थोड़ा पहिचान सकेगा। जो पुरुष इस भेद को नहीं पहिचानता उसके लिये धर्म-मार्ग में चलना कठिन है तथा अक्षय सुख भी उससे ओझल ही रहता है।

यदि तू अपने को पहिचानना चाहता है तो ऐसा निश्चय कर कि भगवान् ने तुझे दो तत्त्वों से युक्त उत्पन्न किया है। इनमें एक तो शरीर है जो स्थूल नेत्रों से दिखायी देता है और दूसरा चैतन्य है। वह अत्यन्त सूक्ष्म है। उसी को जीव भी कहते हैं तथा मन और चित्त भी उसी के नाम हैं। वह स्थूल दृष्टि से परे है उसे बुद्धिरूप नेत्र के द्वारा ही देखा जा सकता है। तेरा निजस्वरूप यह चैतन्यतत्त्व ही है और जितने भी गुण हैं वे इस चैतन्य के ही अधीन हैं, इसी के दहलुए हैं अथवा इसी की सेना के सदृश हैं। मैंने उसी चैतन्य का नाम 'हृदय' रखा है। इसमें सन्देह नहीं कि आत्मा, हृदय और मन ये सब उस चैतन्य के ही नाम हैं; अतः जब मैं हृदय का वर्णन करूँ तो मेरा प्रयोजन शरीर के अंगभूत हृदय-स्थान से न समझें, क्योंकि यह हृदय-स्थान तो मांस और त्वचा आदि से रचा हुआ है और पञ्चभूतों का कार्य है; अतः जड़ है। और मनुष्य का जो चैतन्यस्वरूप हृदय (योगहृदय) है वह स्थूल दृष्टि से सर्वथा विलक्षण है।

वह तो एक परदेशी की तरह अपने कार्य के लिये इस शरीर में आया है। शरीर में जो स्थूल हृदय-स्थान है वह जीवके घोड़े या शस्त्र की तरह है, इन्द्रियाँ सेना हैं और जीव शरीर का राजा है। अतः भगवान् को पहचानना और उनका दर्शन करना—यह जीव का अधिकार है। इसी से दण्ड और उपादेय तथा पाप और पुण्य का अधिकारी भी जीव ही है। तथा भाग्यहीन और भाग्यवान् भी इस जीव को ही कहा जाता है। यह शरीर सर्वदा जीव के अधीन है; अतः उस चैतन्य के स्वरूप को पहचानना और उसके स्वभाव को समझना ही श्रीभगवान् के पहिचान की कुञ्जी है।

बस तू यही पुरुषार्थ कर कि इस चैतन्य के स्वरूप को पहचान जाय, क्योंकि यह चैतन्य रूपी रत्न अत्यन्त दुर्लभ है और देवताओं की तरह नित्य निर्मल है। इस रत्न को खानि परब्रह्म है, क्योंकि यह जीव वहीं से आया है और फिर उसी में लीन भी होगा। इस संसार में तो यह परदेशी की तरह है, अपने कार्य के लिये ही यहाँ आया है। अतः तुझे अपना वह कार्य भी अवश्य पहचानना चाहिये। परन्तु उसकी पहचान श्रीभगवान् की कृपा से ही हो सकती है।

अब मैं आत्मसत्ता के अभ्यास का वर्णन करता हूँ। यह बात निश्चय जानो कि जब तक तुम अपने चैतन्य स्वरूप को नहीं पहिचानोगे तब तक हृदय के वास्तविक स्वरूप को भी नहीं जान सकोगे; और इसी से तुम्हें श्रीभगवान् की भी पहिचान नहीं हो सकेगी और न उत्कृष्ट लोकों का ही ज्ञान होगा। यदि एक दृष्टि से देखा जाय तो चैतन्य सत्ता अत्यन्त स्पष्ट है, क्योंकि उसकी स्थिति शरीर के आश्रित नहीं है, अपितु उसके न रहने पर ही शरीर और इन्द्रियाँ निर्जीव हो जाती हैं और उन्हें मृतक कहा जाता है। इसके सिवा यदि कोई मनुष्य नेत्रादि इन्द्रियों को रोककर चैतन्य का अभ्यास करते हुए अपने शरीर और सम्पूर्ण जगत् को भूल जाय तो उसे निःसन्देह अपने स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है और वह आत्मा के यथार्थ स्वरूप को जान लेता है। जब इसका अधिक अभ्यास और विचार किया जाता है तो सुगमता से ही परमात्मा का भी दर्शन हो जाता है और यह बात प्रत्यक्ष दिखायी देने लगती है कि जब मनुष्य का शरीर छूटता है तो चैतन्यस्वरूप जीव का नाश नहीं होता, वह अपने स्वरूप में ही स्थित रहता है।

इस जीव का जो शुद्ध स्वरूप है—इसका जो वास्तविक स्वभाव है उसका धर्मशास्त्रों ने स्पष्ट शब्दों में निरूपण नहीं किया। कहते हैं, कुछ लोगों ने महापुरुष के पास जाकर पूछा था कि जीव का स्वरूप क्या है। इस पर उन्होंने उसका कोई स्पष्ट वर्णन नहीं किया, भगवत्प्रेरणा से केवल इतना कहा कि यह प्रभु की सत्तामात्र है। इसका और अधिक वर्णन करना उन्होंने उचित नहीं समझा। बस, इतना ही उत्तर दिया कि यह सृष्टि दो प्रकार की है—एक स्थूल सृष्टि है और दूसरी इसकी सूक्ष्म सत्ता। जहाँ पदार्थों की मर्यादा, आकार अथवा घटता-बढ़ता देखा जाता है वह स्थूल सृष्टि है और चैतन्य सत्ता सूक्ष्म रूप है। उसकी कोई मर्यादा या आकृति नहीं है, वह अखण्ड है मनुष्य का जो हृदय स्थान है वह तो अखण्ड रूप है; इसी से मानव-हृदय में एक ओर विद्या और दूसरी ओर अविद्या रहती है। किन्तु चैतन्य सत्तामें इस प्रकार विद्या-अविद्या का भेद नहीं है। इसी से यह अखण्ड कही जाती है। इसकी कोई मर्यादा या सीमा भी नहीं है। इस प्रकार यद्यपि यह भगवत्व-

रूप ही है, तथापि इसे भगवान् ने उत्पन्न किया है, ❀ इसलिये यह 'जीव' कही जाती है। यह जीव सत्ता ही सूक्ष्म सृष्टि है, क्योंकि इसका कोई स्थूल स्वरूप नहीं है।

जिन लोगों ने ऐसा निश्चय किया है कि जीव अनादि है वे भूल में है तथा जो इसे परमात्मा का प्रतिविम्ब मानते हैं वे भी भूले हुए हैं, क्योंकि प्रतिविम्ब तो स्वयं कोई वस्तु ही नहीं होती। इसी प्रकार जो अनादि होता है उसकी कभी उत्पत्ति नहीं होती, और जीव उत्पन्न किया हुआ है तथा इस शरीर का आश्रय है। अतः इसे अनादि या प्रतिविम्ब कहना उचित नहीं। जो लोग इस शरीर को ही आत्मा मानते हैं वे भी भूले हुए हैं, क्योंकि यह शरीर तो खण्ड-खण्ड होता है और आत्मा अखण्ड है। इसके सिवा यह ज्ञान स्वरूप है और शरीर जड़ है। अतः शरीर ही आत्मा नहीं हो सकता। आत्मा तो सत्तास्वरूप, चैतन्य और देवताओं के समान प्रकाशमान है। वास्तव में इस जीव का मूल रूप तो किसी की पहिचान में आना अत्यन्त कठिन है। उसका शब्दों द्वारा निरूपण भी नहीं किया जा सकता। तथा साधन काल में जिज्ञासु को इस का निर्णय करने की आवश्यकता भी नहीं रहती। जिज्ञासु को तो धर्म-मार्ग में बढ़ते रहने का प्रयत्न एवं उद्यम करते रहना चाहिये। जब विधिवत् प्रयत्न करते-करते अभ्यास में दृढ़ता आती है तो उसे स्वयं ही स्वरूप का प्रकाश हो जाता है, फिर किसी के कुछ कहने सुनने की अपेक्षा नहीं रहती। इस विषय में भगवान् ने भी कहा है कि जब पुरुष मेरे मार्ग में चित्त लगाता है और अभ्यास करने लगता है तो मैं उसे अपने स्वरूप का ज्ञान करा देता हूँ। † जिस पुरुष ने सम्यक प्रकार से अभ्यास और प्रयत्न न किया हो उसके आगे आत्मा के स्वरूप की चर्चा करनी उचित नहीं। यदि उसके आगे इसकी चर्चा की भी जायगी तो वह बात उसके हृदय में बैठेगी नहीं।

किन्तु आत्मसाक्षात्कार का प्रयत्न करने से पहिले ही जीव की सेना का परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है, क्योंकि उसको जाने बिना अशुभ सेना से विरोध करना असंम्भव होगा। अतः अगली किरण में जीव की सेना का वर्णन किया जायगा।

❀ 'जीवं कल्पयते पूर्वं ततो भगवान् पृथग्विधान्।'
(माण्डूक्य कारिका २।१६)

† गीता में श्रीभगवान् ने भी कहा है—
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥ (१०।१०)

——

मानव मस्तिष्क पर किसी रचना-विशेष का प्रभाव यदि उसकी महानता का मापदंड है तो अवश्य ही गीता भारतीय विचार दर्शन के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। —सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

विश्व साहित्य में गीता न केवल सर्वाधिक पठित पुस्तक है अपितु इसे श्रद्धा एवं सम्भ्रम भी प्राप्त है।
एलबर्ट स्वीटजर

—(::)—

क्या ईसामसीह योगी थे ?

—स्वामी अभेदानन्द

ईसा मसीह योगी थे कि नहीं ?— इस प्रश्न पर विचार करने के पहले यह समझ लेना चाहिये कि योगी कहलाने के अधिकारी साधक को कितना पवित्र होना होता है। एक सच्चे योगी को शुद्ध, आत्मत्यागी और अपने-आप का पूर्ण स्वामी होना चाहिये। विनम्र, दम्भाचार हीन, क्षमाशील, सच्चाई तथा लक्ष्य-प्राप्ति में दृढ़ता आदि गुणों का होना उसके चरित्र की शोभा है। एक सच्चे योगी को इन्द्रियों एवं ऐन्द्रिक सुखों के प्रति कोई चाह नहीं होती। अहंकार, ममता, घमंड, अभिमान एवं सांसारिक उन्नति के लिये उसके मन में कोई स्थान नहीं होता। सांसारिक जीवन में जो क्षणभंगुरता, दुःख, अवसाद, क्लेश, कष्ट और रोग हैं उन पर विचार करते हुए वह विषयों के बंधनों को काट डालता है। विषयों के बन्धनों के कारण ही हम कष्ट भोगते हैं। साधारण मनुष्यों को यह बन्धन जकड़े रहता है मगर एक योगी इन बन्धनों से अपने को मुक्त कर लेता है। सांसारिक सुख-भोग एवं ऐन्द्रिक उपभोगों में लिप्त रहनेवालों की संगत में योगी को कोई आनन्द नहीं मिलता। ये तमाम ऐन्द्रिक सुख तो पशुओं को भी प्राप्त हैं। योग को पारिवारिक बन्धन नहीं बांध पाते। इसके विपरीत, यह समझकर कि प्रत्येक प्राणी में ईश्वर का निवास है, वह तमाम वैयक्तिक बन्धनों को काटकर इस दुनिया से पूरी तौर से स्वतंत्र हो जाता है।

एक सच्चा योगी कभी विचलित नहीं होता। न तो अच्छे समाचार सुनकर वह सुखी होता है और न बुरे समचार ही उसको दुखी कर पाते हैं। अच्छे और बुरे की पहुँच के बाहर वह चला जाता है। जीत और हार दोनों उसके लिये बराबर हैं, क्योंकि इनको वह कर्मों का परिणाम मानता है। एक सच्चे योगी को ईश्वर में दृढ़ विश्वास होता है। अपने शरीर और मन को वह प्रभु की इच्छा-पूर्त्ति का यंत्र मानता है। इसलिये वह हमेशा दूसरों की सेवा को तत्पर रहता हुआ दूसरों के कल्याण के लिये ही वह जीवन धारण करता है और आवश्यकता होने पर अपना जीवन भी उनके कल्याण के लिये उत्सर्ग कर देता है। उसके तमाम कार्यों का लक्ष्य— जबतक कि वह समाज में रहता है —समाज का कल्याण है। मगर फिर वह एकान्त में एकान्त होकर ध्यानाभ्यास के द्वारा परम प्रभु का आत्मानुभव करता है। एक सच्चा योगी तमाम प्राणियों में एक ही तत्त्व देखता है। उसे मानवमात्र से प्रेम होता है। न कोई उसका मित्र होता है और न शत्रु। वह उस प्रकाशपुँज का सान्निध्य प्राप्त कर लेता है जिससे सब कुछ प्रकाशित होता है। इसलिये जो कुछ भी प्रकाशित है उसका रहस्य उससे छिपा नहीं रह सकता। एक सच्चे योगी का ज्ञान समय एवं दूरी की सीमाओं के बाहर चला जाता है। भूत और भविष्य दोनों उसके लिये हस्त कमलवत् हैं। सात्विक बुद्धि के प्रकाश में उसके अज्ञानांधकार नष्ट हो जाते हैं। इसी-अज्ञानांधकार के कारण हम अपनी आत्मा को नहीं पहचान पाते और इसीलिये हम स्वार्थी, दुष्ट और पापी होजाते हैं। किन्तु एक योगी के चरणों पर तमाम विभूतियाँ लेटती रहती हैं। वह जो कहेगा वह हो के रहेगा। वह कभी कोई शब्द बेकार नहीं बोलता। अगर वह किसी रोगी को आरोग्य का आशीर्वाद दे दे तो वह आशीर्वाद अवश्य ही प्रतिफलित होकर

रहेगा। एक योगी की शक्तियों का अन्त नहीं है। ऐसा दुनिया में कुछ नहीं है जो वह न कर सके। इसका कारण यह है कि अनन्त शक्ति के उद्गम स्वरूप परमेश्वर तक उसकी पहुँच होती है। मगर केवल अपने कौतूहल के लिये या स्वार्थ-पूर्त्ति के लिये या धन और यश की प्राप्ति के लिये या किसी तरह के लाभ के लिये वह कभी शक्ति का प्रयोग नहीं करता। सांसारिक उन्नति और कर्म-फल के प्रति वह उदासीन रहता है। ईश्वरार्पित बुद्धि से काम करता हुआ वह कर्म-फल भी उन्हीं को अर्पित कर देता है। मानापमान का कोई असर उस पर नहीं होता। देवता-पितर भी उसको धन्य मानते हैं। सच्चा योगी सर्वत्र पूजित होता है। अपना कहने को उसे कुछ सांसारिक सम्पत्ति नहीं होती। इसलिये वह स्वतंत्रता पूर्वक रमता रहता है। उसे कोई घर नहीं होता। विस्तृत आकाश उसका घर है और भूमि बिछावन। सारा विश्व उसका बन्धु है और वह सारे विश्व का बन्धु है। जाति, वाह्याचार या राष्ट्रीयता के प्रति उसे कोई मोह नहीं होता। भीषण यंत्रणा देने पर या बोटी-बोटी कर देने पर भी वह बदला नहीं लेता। इसके विपरीत वह यंत्रणा देने वाले के कल्याण के लिये अपने प्रभु से प्रार्थना करता है। ऐसा होता है योगी का चरित्र। आदिकाल से भारतवर्ष में एवं दूसरे देशों में ऐसे योगी होते आये हैं। उनका जीवन चरित्र बहुत ही आश्चर्यजनक होता है। गेलिली में आज से अनकरीबन ढाई हजार साल पहले उपदेश देने वाले योगी का चरित्र भी ऐसाही था। सम्पूर्ण ईसाई संसार के द्वारा पूजित ईसामसीह अति पवित्र, अतिनम्र और महान् त्यागी पुरुष थे। मानव-समाज के इस त्राता के जीवन एवं उपदेशों का अनुशीलन करने से स्पष्ट हो जाता है कि उनमें वे तमाम गुण थे जो, भारतवर्ष के अनुसार, एक योगी में होना आवश्यक बतलाया जाता है।

जेसस क्राइस्ट को उनके शिष्य एवं अनुयायी दिव्य गुण विभूषित महापुरुष तथा ईश्वर का एकमात्र बेटा मान कर उनको पूजते हैं।

ऐसा मानना उनके लिये स्वाभाविक भी है, क्योंकि उनको नजारेथ के जेसस के सिवा ऐसे महान योगियों एवं अवतारों का पता नहीं था, जो उनसे पहले और बाद में भी हुए। इसीलिये वे ऐसा नहीं मानते कि ईसामसीह की पहुँच जहाँ तक थी वहां तक अन्य कोई भी पहुँच सकता है।

जेसस के जीवन के अधिकांश भागों के सम्बन्ध में हमें कोई जानकारी नहीं है। ईश्वरानुभूति की जिस ऊंचाई तक वे चढ़ सके, वहाँ तक जाने के मार्ग का कोई ब्यौरेवार विवरण उनके द्वारा उपदिष्ट नहीं हुआ कि हम जान सकें कि उनकी साधना-पद्धति क्या थी। हम यह भी नहीं जानते हैं कि उपदेश के लिये जनता के समाने आने के आठ बरस पहले से उन्होंने किन पद्धतियों का अनुसरण करके अपनी साधन की। इसलिये साफ तौर से यह कहना कि उन्हों ने इसी साधन-मार्ग को अपनाया और दूसरे को नहीं—भारी भूल है। फिर भी इतना तो हम कह ही सकते हैं कि अत्युच्च आध्यात्मिक जागरूकता पूर्ण संस्कार-बीज लेकर वे उत्पन्न हुए तथा उस संस्कार-बीज को विकसित करने के लिये, जिससे कि वे वे अन्तिम सत्य की प्राप्ति कर सकें, उन्होंने दृढ़ अभ्यास किये। परिणाम-स्वरूप वे दुनिया के महान् आध्यात्मिक नेता और मानवता के रक्षक बने। भारत ही एकमात्र ऐसा देश है जहाँ ऐसे वैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं व्यवहारों

का पूरा विवरण मिलेगा जिसके अभ्यास से मनुष्य परमप्रकाश एवं परम पद को प्राप्त कर सकते हैं जो ईसामसीह ने प्राप्त किया। भारत के महान् योगियों द्वारा उपदिष्ट इस वैज्ञानिक पद्धति के अनुशीलन, व्यवहार एवं अभ्यास के द्वारा कोई भी सच्चा साधक किसी-न-किसी दिन अवश्य उतना ही पवित्र और पूर्ण होने की आशा कर सकता है जितना स्वयं ईसामसीह थे। भारतीय योगियों में बड़ी विचित्रता यह है कि वे कहते हैं कि एक-न-एक दिन सभी उसी पूर्णता को प्राप्त करेंगे जो ईसामसीह ने प्राप्त की। उनका दावा यह है कि भैतिक जगत के प्रकृतिक नियमों की तरह आध्यात्मिक जगत के नियम भी सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक हैं। इन नियमों में देश, काल एवं व्यक्ति के कारण कोई हेर-फेर नहीं होता। इस योगविज्ञान के अध्ययन-मनन एवं अभ्यास के द्वारा महान संतों, ऋषियों एवं अवतारों—कृष्ण और ईसामसीह के जीवन की रहस्यात्मकता की तरह —का भेद खुल जाता है। एक सच्चा सत्यान्वेषी एक ही उदाहरण की विशेषताओं तक अपने अध्ययन को सीमित नहीं रखता बल्कि, सभी महान् पुरुषों के जीवन के अध्ययन के द्वारा ऐसे नियमों का आविष्कार करता है जो सार्वकालिक एवं भौमिक होने के कारण सब पर सदा सर्वदा लागू हैं। उदारणार्थ, जेससक्राइस्ट की उक्ति है, "मैं और मेरे पिता एक हैं"(I and my father are one.)सवाल यह उठता है कि केवल उन्होंने ही ऐसा कहा था या कि उनके बाद के संतो ने— जिनको जेसस की जीवनी के बारे में कुछ भी मालूम नहीं था और जो उन से पहले हुए और बाद में भी होते रहे हैं— भी ऐसा कहा है क्या? भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं— "मैं सारे विश्व का नियन्ता हूँ। भगवान बुद्ध कहते हैं— मैं अंतिम सत्य हूं।" एक मुसलमान सूफी संत कहते हैं— अनहलक, अर्थात्, मैं ब्रह्म हूँ। उसी तरह प्रत्येक सच्चा योगी कहता है— अहं ब्रह्मास्मि, अर्थात्, मैं ब्रह्म हूँ। जब तक हम इन उक्तियों के पीछे जो सिद्धान्त है उसे नहीं समझ लेते, तबतक हम उनका सही-सही तात्पर्य समझ ही नहीं सकते हैं। किन्तु जब हम आत्मा एवं उसके स्वरूप को, ईश्वर से आत्मा के सम्बन्ध को समझ लेते हैं तो फिर इन उक्तियों की रहस्यात्मकता को समझ लेंगे और जो समझ में आ जाय तो फिर रहस्य, रहस्य नहीं रह जाता। तब फिर हम सुनिश्चित रूप से कह सकते हैं कि जो पहुंचे हुए हैं, जिन्हों ने ईश्वर का साक्षात्कार कर लिया है, उनकी बात एकही ढंग की होती है। इसलिये अगर हम नजारथ के जेसस का चरित्र और उनकी दैवी शक्तिओं को समझना चाहते हैं तो, उसका सब से अच्छा रास्ता यही है कि हम योग-विज्ञानका अध्ययन-मनन करें और उसके सिद्धान्तों को व्यवहार में लायें।

योग-विज्ञान उन नियमों को बतलाता है जिनसे दैवी सम्पदा एवं चमत्कार अनुशासित होते हैं। प्रकृति के उन नियमों को योग प्रकाश में लाता है जिन से ये चमत्कार होते हैं। समुद्र पर पैदल चलना, थोड़े-से भोजन से हजारों लोगों की क्षुधा को मिटाना, मुर्दे को जिलाना, आदि चमत्कार दिखाते हुए हम जेसस को पाते हैं। योगियों का कहना है कि योग के दृढ़ एवं सुदीर्घ कालीन अभ्यास से ऐसी विभूतियाँ प्राप्त होती हैं जिनसे ऐसे चमत्कारपूर्ण कारनामें कर गुजरने की ताकत अभ्यासी में आ जाती है। ऐसी शक्ति प्रकृति-विरूद्ध या अमानुषी नहीं है, इसके विपरीत इस तरह की यौगिक विभूतियाँ प्रकृति के अनुकूल हैं। यह अवश्य है कि ऐसी चमत्कारी शक्तियाँ अत्युच्च प्राकृ-

नैक नियमों से अनुशासित होती हैं।—और ये अत्युच्च प्राकृतिक नियम सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक हैं। साधारणतया ये करामात हमें जादू की तरह दीख पड़ते हैं मगर जब हम इन्हें अच्छी तरह समझ लेते हैं तो फिर ये ऐसे नहीं दीख पड़ते, बल्कि, अति सूक्ष्म तत्त्वों की उच्चस्तरीय क्रियाशीलता के स्वाभाविक परिणाम की परिणति से दीख पड़ते हैं। प्राकृतिक नियमों से सर्वथा स्वतंत्र तो कोई घटना होती नहीं। प्रकृति के सम्बन्ध में अगर किसी की धारणा बहुत ही सीमित है तो उस सीमित धारणा-क्षेत्र के बाहर की बातों को वह जादू मानेगा। उसी तरह अगर प्रकृति के सम्बन्ध में किसी की धारणा विस्तृत है तो वे बातें जो पहली धारणा वाले को जादू-सी मालूम पड़ेंगी, दूसरे के लिए सर्वथा स्वाभाविक मालूम पड़ेंगी। इसीलिये साधारणतया एक ईसाई जिन बातों को जादू मानता है उसको योगी स्वाभाविक समझता है। कारण ? बात यह है कि जनसाधारण की प्रकृति के सम्बन्ध में जो धारणायें हैं उससे योगी की धारणा कहीं अधिक विस्तृत होती है। हमें नहीं भूलना चाहिए कि प्रकृति अनन्त है— वृत्त के ऊपर क्रमशः वर्द्धमान वृत्त हैं, स्तर के ऊपर क्रमशः उच्चतर स्तर हैं और वर्ग के ऊपर क्रमशः उच्चतर वर्ग हैं। इस तरह उच्च से उच्चतर और उच्चतर से उच्चतम होते हुए क्रमों का अन्त नहीं। योगी चाहता है कि इन तमाम क्षेत्रों पर लागू होने वाले नियमों की पूरी अभिज्ञाता वह प्राप्त करले। वह शक्ति की क्रियाशीलता के तमाम क्षेत्रों और रूपों का, चाहे वह स्थूल हो या सूक्ष्म, अध्ययन करना चाहता है। प्रकृति के किसी क्षेत्र-विशेष का ज्ञान प्राप्त करके वह चुप नहीं बैठ पाता, वह सम्पूर्ण प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करके उसे काबू में लाकर प्रकृति की सीमा के बाहर चला जाता है। पालकैरस द्वारा बुद्ध पर लिखी किताब का जिन्होंने अध्ययन किया है उनको यह अवश्य ज्ञात होगा कि ईसा के जन्म के ६०० साल पहले भगवान बुद्ध के सुप्रसिद्ध शिष्य सारिपुत्र के श्रावस्ती नाम की विशाल नदी को पैदल पार कर जाने का वर्णन इस में आया है। वेदान्त दर्शन के प्रतिष्ठाता श्री शांकाराचार्य के शिष्य पद्मपाद का भी बड़ी नदी को पैदल पार कर जाने का वर्णन हमें मिलता है। यह घटना क्राइस्ट के कम-से-कम ६०० वर्ष बाद की है। योगिराज कृष्ण के बारे में हमें यह पढ़ने को मिलता है कि ईसा के १४०० साल पहले उन्होंने मुर्दे को जीवन-दान दिया। इसी तरह हमें यह पढ़ने को मिलता है कि ईसा की तरह उन्होंने भी थोड़े-से खाद्य पदार्थ से हजारों की क्षुधा तृप्त की। बाद में आनेवाले अनेक भारतीय योगियों के सम्बन्ध में ऐसे वर्णन पढ़ने को मिलते हैं। ये वर्णन वैसे ही सत्य हैं जैसे कि ईसामसीह के। इस तरह हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि ईसामसीह के द्वारा किये गये अनेक अलौकिक कार्यों को उनके पूर्ववर्ती और परवर्ती अनेक भारतीय योगियों ने भी किये हैं।

घटना-विशेष को परिस्थिति एवं व्यक्ति की पार्श्व-भूमि से अलग करके देखने पर ऐसे कार्यों को हम जादू समझ बैठने की गलती कर बैठते हैं। लेकिन जब हम पूरी परिस्थिति पर विचार करते हैं और यह जान लेते हैं कि ऐसी घटनाएँ इसी परिस्थिति में हुई हैं तो फिर उसे सर्वथा प्राकृतिक मान लेने में कोई दिक्कत नहीं होती। फिर हमें उन प्राकृतिक नियमों का भी पता चल जाता है, जिनसे ऐसी घटनाएँ अनुशासित होती हैं। तब तो 'जादू' की संज्ञा से अभिहित होनेवाले तथ्य भी बोधगम्य हो जाते हैं। यहीं योग-विज्ञान

की उपादेयता सर्वाधिक है। प्रकृति के रहस्यों के उद्घाटन में योग-विज्ञान जितना कारगर है उतना अन्य कोई विज्ञान नहीं। योग-विज्ञान के प्रकाश में जादू की रहस्यात्मकता जाती रहती है।

सारी सृष्टि जिस शक्ति से उत्पन्नहुई है, एक सच्चा योगी उसके केन्द्र में पहुँच जाता है और प्रकृति को काबू में लाने के तमाम गुण उसको हासिल हो जाते हैं। वह जान लेता है कि सारी सृष्टि के मूल में एक शक्ति है और उस शक्ति को यौगिक भाषा में 'प्राण' कहा जाता है। इसी प्राण शक्ति से ये असंख्य सूर्य, चन्द्रग्रह, उपग्रह और नक्षत्र उत्पन्न हुए हैं। इस प्राण शक्ति ने सूर्य के जलते गोले से पृथ्वी को अलग कर लिया, इसे ठंढा किया, इसके लिये अनुकूल वायुमंडल बनाया, समुद्र और नदियां उत्पन्न किये, जलचर, थलचर, नभचर, स्थावर, जंगम, पहाड़, मनुष्य आदि बनाये। छोटे-से पदार्थ को बड़ा बना देना तो इसके बाएँ हाथ का खेल है। इसी प्राण शक्ति की क्रियाशीलता के कारण हम जीवन धारण किये हुए हैं। यही हमारी चेतना को चेतनता प्रदान करती है। प्रकृति का प्रत्येक अणु और परमाणु इसी प्राण शक्ति के कारण सर्वदा गतिशील रहता है।

जो तमाम प्रकृति की शक्ति के मूल में पहुँच जाता है तथा उसके नियम-विधान को समझ लेता है, उसके लिये समुद्र पर चलना या पानी को शराब बना देना या मुर्दे को जिन्दा कर देना क्या बड़ी बात है? योग-विज्ञान के किसी सच्चे ज्ञाता के लिए— जैसा कि ईसामसीह थे– तो ये बातें बहुत ही साधारण-सी योग-शक्ति के प्रयोग के परिणाम हैं। ऐसे कार्य भारतीय योगी अनेकों बार कर चुके हैं और आज भी करते हैं। एतएव हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि ईसामसीह सेमेटिक परिवार में उत्पन्न हुए एक महायोगी थे।

ईसामसीह एक महान् योगी थे। इसीलिए उन्होंने संसार की क्षणभंगुरता को समझा। ऐसा समझ कर उन्होंने सत्य का वरण किया और असत्य का त्याग। उन्होंने तमाम सांसारिक इच्छाओं एवं ऐन्द्रिक सुखों का परित्याग कर दिया। एक महायोगी की तरह उन्हों ने सम्पूर्ण संसार का परित्याग कर एकान्त में अपनी योग-साधना की। घर-द्वार, माता-पिता, स्वजन-परिजन और इष्ट-मित्र सब कुछ को छोड़ कर आप ने योग को पकड़ा।

ईसामसीह एक महा कर्मयोगी थे, क्योंकि, फल की आशा से उन्होंने कभी कोई काम नहीं किया। काम, क्रोध,मद,लोभ, अहंकार आदि जितने भी विकार हैं, वे उन सबों की सीमा के बाहर थे। मानापमान, लाभालभ और जयाजय उनकी शान्ति को विचलित करने में असमर्थ थे। जनकल्याण के लिये उनकी सेवाएँ समर्पित थीं। कर्मफलाकांक्षा हीन होने के कारण कर्मों के बन्धन से वे सर्वथा मुक्त थे। फिर भी मानव-समाज को उन्होंने कल्याण का सच्चा मार्ग बतलाया। कर्म करते हुए कर्म-फल से मुक्त रहने के कारण ही वे कर्मयोगी थे। कर्म-योग के मूल सिद्धान्त को उन्होंने अपने शब्दों में इस तरह कहा है— (Whatsoever a man soweth, that shall he reap") 'जैसा बीज बोओगे, वैसा ही फल पाओगे।"

नजारेथ के संत जेसस (ईसामसीह) महान भक्त थे। भक्ति योग में भी उनकी गति बड़ी विलक्षण थी। उठते, बैठते, खाते, पीते, सोते, जागते हुए— यहां तक हरदशा में, सूली पर चढ़ते हुए भी —उनकी प्रार्थना चलती रहती थी। ध्यानाभ्यास भी उनका नियमित रूप से चलता रहता था महान् कष्ट झेलते हुए भी।

यहाँ तक कि मौत के समय वे जरा भी विचलित नहीं हुए। अपने पिता की भक्ति में इतने लीन रहते थे कि कोई भी दुःख उनको विचलित नहीं कर सकता था। यह सही है कि कुछ समय के लिये तो उनके कष्ट बर्दाश्त के बाहर हो गये। उन्होंने तीन बार अपने पिता (ईश्वर) को पुकार कर प्रार्थना की कि ("O my Father, if it be possible, let this cup pass from me!" "ऐ मेरे पिता अगर सम्भव हो तो तू यह प्याला मुझसे ले ले।" लेकिन कुछ क्षणमात्र के लिए अपने ईश्वर से ऐसी प्रार्थना करने का मतलब यह है कि स्वयं ईसामसीह भी मनुष्य थे। फिर भी जब तक उन्होंने अपने-आप को पूरी तौर से अपने पिता के चरणों में समर्पित नहीं कर दिया तबतक उनको शान्ति नहीं मिली। अंत में उन्होंने ईश्वर के हाथों अपनी पतवार सौंप दी और कहा — "ऐ मेरे पिता (ईश्वर)! जो तेरी मर्जी है वही कर!" भक्तियोग का मुख्य अंग आत्मसर्पण है। उन्होंने अपने पिता के चरणों में अपने-आप को पूरी तरह समर्पित कर दिया। वे सच्चे भक्त थे।

भारतवर्ष के राजयोगियों को यह अच्छी तरह मालूम है कि शरीर से आत्मा को कैसे भिन्न किया जाय, जाना जाय और पाया जाय? ईसामसीह को भी वह अच्छी तरह मालूम था।

जब उनको सूली पर चढ़ाकर ठोका जा रहा था, उस समय वे किस शारीरिक यातना के शिकार होंगे, इसकी कल्पनामात्र से रोएं खड़े हो जाते हैं। इस महान् यंत्रणा को सहते हुए भी उनका मन उनके नियंत्रण में था। उन्होंने पूर्ण मनोयोग के साथ अपने पिता से प्रार्थना करते हुए कहा — "ऐ मेरे पिता, तू इनको क्षमा कर दे, ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं!" क्रास पर कांटियों से जब अंग-अंग बेधा जा रहा हो, जब रक्त के फव्वारे शरीर से निकल रहे हों, उस समय आत्मनिष्ठ हो कर आततातियों के लिये ईश्वर से क्षमा-याचना करना एक असाधारण एवं अनहोनी-सी बात है। मगर एक योगी के लिए यह सर्वथा सम्भव है।

उन्नीसवीं सदी के भारतवर्ष के सबसे बड़े योगी श्री रामकृष्ण परमहंसदेवजी महाराज थे। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध लेखक मैक्समूलर ने उनसे पूछा, "क्रास (सूली) पर ठोके जाने की भीषण यंत्रणा को भोगते हुए भी यह ईसामसीह के लिए कैसे सम्भव हुआ कि उन्होंने अपने आततायियों की माफी के लिए प्रार्थना की?" परमहंसदेवजी महाराज ने उदाहरण के द्वारा इस तरह समझाया —"जब हम डाभ में छेद करते हैं तो वह उसके भीतर के खोल को छेद कर पानी तक पहुँच जाता है। किन्तु सूखे नारियल में छेद करने पर हम पानी की सतह तक नहीं पहुँच पाते। इसका कारण यह है कि सूखे नारियल का गरी वाला भाग जिस खोल में बन्द होता है वह उपर के भाग से एकदम अलग होता है। इसलिए उपर से छेद करने पर गरी का कुछ नहीं बिगड़ता। उसी सूखे नारियल की तरह थे हमारे ईसामसीह। उनकी आत्मा शरीर से पूर्णतया विलग थी। इसलिए उनके शरीर को दी जाने वाली यंत्रणाओं का कोई असर उनकी आत्मा पर नहीं पड़ा।" इसीलिए महान शारीरिक यंत्रणा का सहन करते हुए भी आततायियों की क्षमा के लिए शान्ति पूर्वक परम प्रभु से निवेदन करते रहे। यह वह स्थिति है जिसे समाधि कहते हैं। समाधि में बाह्य चंचलता का होना सम्भव ही नहीं। ऐसी दशा में शरीर से आत्मा के विलग होने तक यही प्रार्थना चलती रही। इसी

प्रार्थना में उनके प्राण छूटे । सम्पूर्ण मानवता को उन्नत करने में ऐसी प्रार्थनाएँ कितनी प्राण शक्ति देती रही हैं, कौन जाने ?

भारतवर्ष में आज भी कितने सशक्त योगाभ्यासी हैं कौन जाने ? उनकी प्राण शक्ति ने परमात्मा के साक्षात्कार से और कितनी शक्ति मानव कल्याण के लिये दी है, कौन जाने ?

ईसामसीह एक महान योगी थे । तभी तो वाह्य संघात उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ पाता था ।

उनका मार्ग प्रेम और भक्ति का था । अपने ईश्वर को वे पिता कहा करते थे । यह पिता परम प्रभु थे जो घट-घट वासी हैं ।

ज्ञान योगी जब उसका साक्षात्कार अपने में कर लेता है तो फिर वह कह उठता है "अहम् ब्रह्मास्मि" । एक दूसरे सूफी योगी मंसूर ने कहा— अनहलक । अर्थात, मैं खुदा हूँ । ईसामसीह ने कहा— मैं और मेरे पिता—जो स्वर्ग में हैं और जिन्होंने मुझे भेजा है—एक हैं । अच्छे कार्यों के द्वारा, ज्ञान, भक्ति प्रेम, एकाग्रता, ध्यान, लम्बा आहार एवं कठोर तपस्या के द्वारा उन्हों ने जो मार्ग पाया उसको उन्होंने अपेक्षतया अत्यल्प परिश्रम करने वालों के लिये भी आसान बना दिया । यही तो आदर्श ज्ञानयोगी की देन है ।

संत कृष्ण, संत बुद्ध एवं अन्य भारती योगियों के द्वारा रोगग्रस्त चंगा कर दिए गये हैं । अंधों को आखें दी गयीं । सूरदास के शब्दों में— "पंगु चढै गिरि राई" । ईसामसीह भी ऐसा कर सकते थे । उनके अन्दर भी कृष्ण और बुद्ध की तरह आगन्तुक के या शिष्यों के मनोभाव को जान लेने की अपार शक्ति थी । ईसामसीह पहले से यह जानते थे कि उनके शिष्यों के क्या इरादे हैं । जुडास और पीटर के द्वारा भविष्य में जो आचरण होनेवाले थे, वह भी उनको मालूम था । किसी भी योगी को प्राप्त होने वाली मुक्ति का मार्ग सब के लिए खोल दिया जाता है । योगविज्ञान एवं वेदान्त दर्शन की कसौटियाँ पर कसने से उनके वचन खरे उतरते हैं । उनके वचन और आचरण में एकता थी । वेदान्त दर्शन के प्रकाश में उनके चरित्र की समीक्षा करने पर हम और अच्छी तरह उन्हें समझ सकेंगे । सच पूछा जाय तो तभी हमें उनकी महानता को समझने के लायक थोड़ी-बहुत अक्ल होगी ।

भौतिक विज्ञान वेत्तागण इसका मजाक उड़ाते रहे हैं । किन्तु भारत उनके इन कृत्यों को करने की शक्ति में विश्वास करता है । इसलिए उनको एक महान संत मानकर उनका आदर करता है । इसका कारण भी है । भारत में योग विद्या के जानकार आदिकाल से होते रहे हैं । वे लोग कहते हैं कि ऐसा हो सकता है । जब तक भारत का योग-शास्त्र वर्त्तमान है तब तक उनके कृत्यों को कोई चुनौती दे नहीं सकता । आज भी कोई अच्छा अभ्यासी इसे कर के प्राप्त कर लेगा । वेदान्त दर्शन के प्रकाश में विचार करने पर इन कृत्यों की वैज्ञानिकता हम अच्छी तरह समझ लेते हैं ।

ऐ आलसी ! तू चींटी के क्रिया-कलापों को गौर से देख और बुद्धिमान बन ।

बाइबिल : पुराना नियम : लोक कथा ६ । ६

मनुष्य को प्रकाश से उतना प्रेम नहीं है जितना अंधकार से— क्योंकि उसके कारनामे काले हैं ।

बाइबिल : नया नियम : जौन ३ । १९

सूरदास का वात्सल्य

हरिश्चन्द्र सिंह

सूरदास जी हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कवियों में एक हैं। किन्तु जहाँ तक बाल-लीला के वर्णन का सम्बन्ध है— उनको सर्वश्रेष्ठ कहने में किसी तरह के विरोध का भय नहीं है।

किसी कवि ने बाल-लीला का वर्णन इतना आकर्षण के साथ नहीं किया है जितना सूरदास जी ने।

नमूना के लिये अधोलिखित कविता देखिये—

जसोदा हरि पालनैं झुलावै
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ सोइ कछु गावै।
मेरे लाल की आउ निंदरिया, काहे न आनि सुवावै।
तू काहे न बेगि सों आवे, तोको कान्ह बुलावै।
कबहुँ पलक हरि मूँद लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि, करि करि सैन बतावै।
यहि अंतर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरै गावै।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि दुर्लभ, सो नँदभामिनि पावै।

यहाँ प्रसंग, शब्द और अर्थ दे दिया जाता है।

प्रसंग— बालक श्री कृष्ण जी को माता यशोदा सुला रही हैं। श्री कृष्ण जी पालने पर झुलाये जा रहे हैं।

शब्दार्थ— हलरावै—हिलाती हैं। मल्हावै = चित्त बहलाती हैं, ऐसी बातें करती हैं जिससे बच्चे का मन प्रसन्न हो जाय। नँद भामिनी—यशोदा।

माता यशोदा बालक श्रीकृष्ण को पालने (झूले) में झुलाती हुई सुला रही हैं। वह पालने को हिलाती हैं, तरह-तरह की बातें कहकर बहलाती हैं और जो जी में आता है गाती हैं। (उन गानों का मतलब यह है) हे नींद! तू मेरे लाल (श्रीकृष्ण) के पास आकर उसे क्यों नहीं सुलाती है? तुझे श्रीकृष्ण बुला रहे हैं, अतः तू शीघ्र क्यों नहीं आती? सोने की चेष्टा करते हुए श्रीकृष्ण आँख बन्द कर लेते हैं और कभी ओठ फड़काने लगते हैं। श्रीकृष्ण को सोते देखकर माता यशोदा संकेत से लोगों को कहती हैं कि चुप रहो। इसी बीच में श्रीकृष्ण व्यग्र होकर चंचल हो उठे तो यशोदा उन्हें सुलाने लिये मधुर स्वर में गीत गाने लगीं। भक्त सूरदास जी कहते हैं कि जो सुख देवताओं एवं मुनियों के लिये दुर्लभ है, वह सुख यशोदा श्रीकृष्ण की बाल-लीला में पा रही हैं।

केवल भारत ही नहीं, बल्कि, प्रत्येक देश में बच्चों के माताएँ इसी तरह सुलाती हैं। यहाँ जो तस्वीर खींची गयी है वह तो श्रीकृष्ण की है, किन्तु उसके द्वारा सम्पूर्ण बाल-संसार के बालकों के सोने का चित्र हमारे सामने साफ हो जाता है।

सभी देश के बच्चे मुँह में अंगूठा देकर उसे चूसते हुए आनन्द से हँसते-खेलते और किलकारी भरते हैं। सूरदास जी कहते हैं—

कर पग गहि अंगुठा मुख मेलत!
प्रभु पौढ़े पालनैं अकेले, हरषि-हरषि अपनैं रंग खेलत।

शब्दार्थ— कर = हाथ से, पग = पाँव, गहि = पकड़कर, मेलत = डाल रहे हैं।

अर्थ— पालने पर लेटे हुए श्रीकृष्ण अपने हाथों से अंगूठे को मुँह में डालकर आनन्द पूर्वक चूस रहे हैं और अपने रंग में मस्त होकर खेल रहे हैं।

प्रत्येक माता अपने पुत्र के रूप को देखकर भय खाती है कि कहीं किसी की नजर न लग जाय

यहाँ माता यशोदा कहती हैं—

ललना हौ या छबि ऊपर बारी
बाल गुपाल ! लगौ इन नैननि रोग बलाइ तिहारी ॥

यशोदा जी श्रीकृष्ण को देखकर कहती हैं— "हे लाल ! मैं तुम्हारी इस छवि पर न्यौछावर हूँ। मेरे बाल-गोपाल ! तुम्हारे जितने रोग-संकट हैं वे इन नेत्रों को आ लगें, मगर तूँ तो सुरक्षित रह।"

श्रीकृष्ण अब कुछ बड़े हो गये हैं और घुटनों पर चलने लगे हैं।

इस दशा का वर्णन सूरदास जी के शब्दों में सुनिये—

घुटरुन चलत स्याम मनि आंगन,
मातु-पिता दोउ देखत री।
कबहूँ किलकि तात मुख हेरत,
कबहूँ मातु मुख पेखत री।
लटकन लटकत ललित भाल पै,
काजर बिन्दु भ्रुव ऊपर री।
यह सोभा नैनन भरि देखैं,
नहिं उपमा तिहुँ भू पर री।
कबहुंक दौरि घुटुरुअन लपकत,
गिरत, उठत पुनि धावै री।
इत तैं नंद बुलाइ लेत हैं,
उत तैं जननि बुलावै री॥
दंपति होड़ करत आपुस में,
स्याम खिलौना कीन्हौ री।
सूरदास प्रभु ब्रह्म सनातन,
सुत हित करि दोउ लीन्हौ री॥

अर्थ— (कोई गोपी कहती है) सखी ! श्यामसुन्दर मणिमय आंगन में घुटनों के बल चल रहे हैं और माता-पिता (यशोदा और नंद) दोनों (उन्हें) देख रहे हैं। कभी किलकारी मारकर पिता का मुख देखते हैं तो कभी माता का।

सुन्दर ललाट पर लटकन लटक रहा है। भौंह के ऊपर काजल का बिन्दु (डिठौना) लगा है। इस शोभा को आँख भर देखने का मौका हमें मिला है, सो इस सुख की उपमा नहीं दी जा सकती है। कभी घुटनों दौड़कर लपकते हैं, गिर पड़ते हैं (और) फिर उठकर दौड़ने लगते हैं। इधर से नन्द जी उन्हें बुलाते हैं और उधर मैया बुलाती हैं। दम्पति (माता-पिता) परस्पर होड़ कर रहे हैं (कि मोहन किसके पास आता है) श्यामसुन्दर को उन्होंने खिलौना बना लिया है। सूरदास जी कहते हैं— मेरे स्वामी सनातन ब्रह्म हैं, किन्तु दोनों (श्री नन्द-यशोदा) ने अपने प्रेम से उन्हें पुत्र बना लिया है।

खाने की कोशिश में बच्चे लेप लगा लेते हैं और जमीन पर घुड़कने के कारण धूलि से सन जाते हैं। यहाँ सूरदास जी की उक्ति है—

सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुन चलत रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किये॥

श्यामसुन्दर हाथ में मक्खन (का लौंदा) लिये शोभित हो रहे हैं। घुटनों के बल चलने के कारण शरीर धूलि से सनकर (बड़ा ही) भला लगता है और मुख पर दही पोत रक्खा है।

आज भी बच्चों का हाथ पकड़कर उनको चलना सिखलाया जाता है।

यहाँ श्रीकृष्ण जी को चलना सिखलाया जा रहा है—

सिखवत चलन जसोदा मैया,
अरबराइकर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरे पैया।
कबहुँक सुन्दर बदन बिलोकति, उर आनन्द लेती बलैया।
कबहुँक कुलदेवता मनावति, चिर जीवहु मेरो कुंवर कन्हैया।

(शेषांश पृष्ठ २७ पर)

कठोपनिषद् का मर्म

चक्रवर्ती श्री राजगोपालाचार्य

कुरुक्षेत्र का वह महान् प्रसंग, भगवद्गीता का पूर्वअंग, जिसमें अनुताप और संशय का मारा महारथी अर्जुन मार्ग-दर्शन के लिये अपने दिव्य सारथी की शरण लेता है, प्रत्येक हिन्दू को ज्ञात है। कठ उपनिषद भी उसी प्रकार की भव्य प्रस्तावना से प्रारंभ होता है, जो उसकी महान शिक्षा के लिये एक उदात्त पीठ भूमिका प्रस्तुत करती है।

वाजश्रवा ने एक महायज्ञ किया, जिसका अन्त एकत्रित अतिथियों को सर्वस्व दक्षिणा में दे देने से हुआ। वाजश्रवा का पुत्र नचिकेता यह सब विधिकर्म देख रहा था और जब उसने दक्षिणा में दी गयी चीजें देखीं तो उसका हृदय उन सब की व्यर्थता के विचार से भर गया।

उसने मन में सोचा--"इन दन्तहीन, वृद्ध पशुओं और दुग्धहीन गौओं के दान से क्या लाभ? यदि मेरे पिता अपनी प्रिय वस्तुओं का दान करना चाहते हैं, तो क्या उन्हें मेरा दान नहीं कर देना चाहिये? इसलिये, वह अपने पिता के पास गया और बोला—"पिता, आप मेरा दान किसे करेंगे?" उसके पिता ने प्रश्न पर कोई ध्यान नहीं दिया और वह अपने महायज्ञ की विधि पूर्ण करते रहे। नचिकेता ने प्रश्न को बार-बार दुहराया। अन्त में वाजश्रवा धैर्य खोकर बोल उठे "तुम्हें? तुम्हें मैं यमराज को दूँगा।" इन शब्दों का वाच्यार्थ उनके मन में नहीं था।

ऐसे पवित्र अवसर पर केवल वैसे ही शब्द कहे जा सकते थे, जो पूरे किये जायँ। पिता अपने आवेश से स्तब्ध हो गये। तथापि नचिकेता ने तो यमराज के पास जाने का निश्चय कर लिया। "मेरे पहले अनेक गये हैं और मेरे पश्चात् भी बहुत लोगों को जाना पड़ेगा ही, मैं अकेला यमराज के पास नहीं जा रहा हूँ और यमराज मेरा कर भी क्या सकते हैं? सोचो, इसके पहले क्या हुआ है और भविष्य में क्या होने वाला है। उसके पूर्व मरे हुए मर्त्य असंख्य हैं और आगे भी अगणित लोग मरेंगे ही। मर्त्य का जीवन उस अनाज के समान है, जो उगता है, पकता है और काट लिया जाता है, और वह उस अनाज के समान है जो गिर जाने पर पुनर्जीवित हो जाता है।

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः।
किंस्विद्यमस्य कर्त्तव्यं यन्मयाद्य करिष्यति॥
अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथा परे।
सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः॥

१।५-६

इस प्रकार नचिकेता यमराज के पास गया। यमराज इस स्वयंभू अतिथि को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं थे। वह किसी को भी समय के पूर्व आने नहीं देना चाहते थे। यमराज से साक्षात होने के पूर्व नचिकेता को तीन दिन ठहरना पड़ा। ब्राह्मण की उपेक्षा यमराज भी नहीं कर सकते थे। इसलिये अपने अपराध की निवृत्ति के लिये उन्होंने नचिकेता को मुंह माँगा वरदान देने का वचन दिया। उन्होंने दीर्घायुष्य, विश्व की समस्त सम्पदा और उसके पश्चात् स्वर्गप्राप्ति आदि के अनेक वरदान देने चाहे, परन्तु नचिकेता ने उनसे आत्मतत्त्व की शिक्षा की याचना की।

नचिकेता ने कहा, इस ज्ञान के वर से भिन्न मैं कोई वर नहीं चाहता, और इसकी शिक्षा देने के लिये आप से अधिक अच्छा गुरु कौन है? जब तक आप

सब का अन्त करने के लिये उपस्थित हैं तब तक आयुष्य-वृद्धि से क्या लाभ ? और सम्पत्ति, संगीत, नृत्य, अश्वों और रथों से क्या आनन्द प्राप्त हो सकता है ?

यमराज ने नचिकेता को समझाया :—

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा
न हि सुविज्ञेयमणुरेष धर्मः ।
अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व
मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ॥

१ । २१

देवताओं को भी इस विषय में संदेह हुआ था। आत्मा का तत्त्व इतना सूक्ष्म है कि उसे संतोषजनक रीति से समझना असंभव है। नचिकेता कोई अन्य वर माँग लो। इस पर आग्रह मत करो, इससे मुझे मुक्त कर दो।

परन्तु नचिकेता ने उत्तर दिया:—

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल
त्वं च मृत्यो यन्न सुविज्ञेयमात्थ ।
वक्ता चास्य त्वादृगन्यो नलभ्यो
नान्यो वरस्तुल्यश्च एतस्य कश्चित् ॥

१ । २२

आप कहते हैं कि देवताओं को भी इस विषय में संदेह हुआ था और यह सरलता से समझा भी नहीं जा सकता। तो हे यमराज ! इसे आप जैसा समझाने वाला और हो भी कौन सकता है ! और, दूसरा कौन-सा वर इसकी बराबरी कर सकता है ? वस्तुतः कोई भी नहीं।

शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व
बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान् ।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व
स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥ १ । २३

आप फिर भी सलाह देते हैं कि—

सैकड़ों वर्षों की आयुवाले पुत्र-पौत्र माँग लो। बहुत सी गायें, हाथी, स्वर्ण और अश्व माँग लो ! भूमि के विस्तृत क्षेत्र मांगो और जितने वर्ष चाहो, जीवित रहो !

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं
वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च ।
महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि
कामानां त्वा कामभाजं करोमि ॥

१ । २४

अथवा, सम्पत्ति और दीर्घायुष्य के साथ-साथ इसके तुल्य जो दूसरा वर समझो वह मांग लो। हे नचिकेता, तुम विस्तृत देश के सम्राट बनो, मैं तुम्हें सब कामनाओं का भोग करने के योग्य बना दूंगा।

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके
सर्वान्कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व ।
इमा रामाः सरथाः सतूर्या
न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः ।
आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व
नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः ॥

१ । २५

मर्त्य लोक में दुर्लभ कोई भी वर इच्छानुसार मांग लो। रथ पर बैठो और मुरली वादन करती हुई इन अप्सराओं को ले लो। मनुष्य ने इनके समान अप्सरायें कभी नहीं देखी। मेरी आज्ञा से ये तुम्हारी सेवा करेंगी परन्तु मुझसे मृत्यु के विषय में मत पूछो।

नचिकेता अटल रहा उसने कहा:—

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्
सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः ।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव
तवैव वाहास्तत नृत्यगीते ॥ १ । २६

हे यमराज ! ये क्षणभंगुर सुख मृत्यों की इन्द्रिय शक्ति को क्षीण कर देते हैं। यदि यह जीवन भर सुलभ रहें तो भी अल्प ही हैं। आप इन रथों, गीतों, और नृत्यों का सुख-भोग मुझे लेने कहते हैं, परन्तु यद्यपि आप इन्हें देते हुए दिखलाई पड़ते हैं फिर भी भोक्ता के मृत्यु से मर्यादित होने के कारण, ये आपको पास ही रहते हैं।

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो
लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वां
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं
वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥

१ । २७

मनुष्य को धन से संतोष कैसे हो सकता है ? मरने पर क्या हम धन साथ ले जा सकते हैं ? हम उतने ही दिन जीते हैं, जितनी आपकी इच्छा होती है। इसलिये, जो वर मैंने माँगा है वही माँगने के योग्य है।

इस प्रकार इहलौकिक और पारलौकिक सुखों का लोभ दिखाकर भी यमराज नचिकेता को जीवन का रहस्य जानने के आग्रह से विरत करने में सफल न हुए। उन्होंने कहा, तुमने साहस और दृढ़ निश्चय का परिचय दिया है। तुम से अच्छा जिज्ञासु, कोई नहीं हो सकता। और तुम स्वयं कह चुके हो, मुझसे अच्छा गुरु कोई नहीं हो सकता। अब तुम सुनो, मैं तुम्हें बताऊंगा।

उसके पश्चात शिक्षा का आरम्भ हुआ।

सत्य की खोज में मनुष्य को सर्व प्रथम यह ज्ञान होना चाहिये कि प्रेय से श्रेय भिन्न है। इसलिये यम ने इस प्रकार अपनी शिक्षा प्रारम्भ की:—

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते
उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः ।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु
भवति हीयतेऽर्थाद्य उप्रेयो वृणीते ॥
श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ
संपरीत्य विविनक्ति धीरः ।
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमादवृणीते ॥ २ । १-२

श्रेय एक वस्तु है, प्रेय दूसरी और ये दोनों मनुष्य को बहुत भिन्न लक्ष्यों पर पहुँचाते हैं। जो श्रेय का वरण करता वह सुख प्राप्त करता है, जो श्रेय को पसंद करता है वह सदैव अपना अभिष्ट खोता रहता है। ज्ञानी लोग प्रेय के आकर्षण से धोखे में नहीं पड़ते। वे श्रेय का वरण करते हैं। अज्ञानियों के दल प्रेय के जाल में फंसकर नष्ट हो जाते हैं।

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
स्वयं धीराः पण्डितंमन्यमानाः
दन्द्रव्यमाणाः परियन्ति मूढा
अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥ २।५

अज्ञान में डूबे हुए मनुष्य कर्म और प्रयत्नों में प्रवृत्त रहते हैं और अपने को विद्वान तथा बुद्धिमान मानकर नाना जन्मों के चक्र में घूमते हुए ठीक वैसे ही निरुद्देश्य भटकते-गिरते हैं, जैसे अन्धों द्वारा ले जाये गये अन्धे।

उच्चतर जीवन की साधना करने वाले मनुष्य के मार्ग में प्रमुख बाधा यह है कि मनुष्य अपनी आत्मा और शरीर को एक जानता है। इसलिये वेदान्त की समस्त शिक्षा अन्तःस्थित आत्मा के साक्षात्कार पर जोर देती है। अन्त स्थित, शाश्वत आत्मा की दिव्यता की अनुभूति हो जानेपर विजय प्राप्त हो जाती है।

तं दुर्दर्शं गूढ़मनुप्रविष्टं
गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।

अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं
मत्वा धीरो हर्ष शोकौ जहाति ॥ २।१२

अन्तः स्थित परमात्मा में मन को एकान्त करके मनुष्य को अपने आत्मा की दिव्यता और स्वतःसिद्ध स्वतंत्रा का अनुभव कर लेना चाहिये। सुख-दुखादि द्वन्द्व और सांसारिक विषयों में आसक्ति के कारण अन्तःस्थित आत्मा पहचाना नहीं जाता। जब मनुष्य अपने अन्तर्निवासी परमात्मा का साक्षात्कार करलेता है, तब सुख और दुःख की समस्त भ्रांति सदा के लिये मिट जाती है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष
आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम् ॥
नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥
२।२३-२४

यह साक्षात्कार तभी हो सकता जब मनुष्य के हृदय के अन्दर से निश्चय की पवित्रता और भाव की सचाई स्फुरित हो, यह अध्यन अथवा विद्वत्तापूर्ण तर्क-वितर्क से संभव नहीं है। साक्षात्कार उसे ही हो सकता है जिसकी अन्तरात्मा उसके लिये व्याकुल हो उठती है, जिसका मन बुराइयों से पूरी तौर से फिर चुका है और अपने-आपको वश में रखना तथा सांसारिक संघर्षों में सम रहना जो सीख चुका है।

दूसरे शब्दों में, साक्षात्कार अनासक्ति में प्रवृत्त रहने वाली आकुलता से प्राप्त होता है, बहुत विद्वत्ता से नहीं। अर्थात, वह हमारे अन्तःकरण में निवास करने वाले परमात्मा की कृपा से प्राप्त होता है।

आत्मा परिवर्त्तन शील शरीर से भिन्न है। आत्मा दिव्यतामूलक है। जिस मन में वह परिवृत्त है उसके गुणों से उसमें विकार उत्पन नहीं होता, उसकी ही आन्तरिक दिव्यता की अनुभूति के द्वारा उसे उन गुणों के जाल से मुक्त किया जा सकता है।

यद्यपि यहाँ नचिकेता को आत्मवेदना के बिना युद्ध में प्रवृत्त होने के लिये समझाने का कोई प्रश्न नहीं है, तथापि पाठक देखेंगे कि कठोपनिषद् के श्लोक गीता के तद्विषयक श्लोकों से लगभग पूर्णतया मिलते हैं—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं
भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २।२०

तुम न जन्म लेते हो, न मरते ही हो ॥ तुम किसी अन्य वस्तु से उत्पन्न नहीं हुए, न अपने से भिन्न किसी उपादान से बने हो। तुम अजन्मा, नित्य, शाश्वत और सनातन हो। शरीर के नाश किये जाने पर भी तुम्हारा नाश नहीं होता।

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुँ हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायँ हन्ति न हन्यते ॥ २।१९

यदि तुम मानते हो कि तुम किसी के द्वारा मारे जाओगे या तुम्हारे द्वारा कोई मारा जायगा। तो इन दोनों ही बातों में गलती करते हो। आत्मा न तो किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जाता है।

(२)—१९

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य
जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको
धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥

अणु से भी सूक्ष्म और महत्तम से भी महान आत्मा सब प्राणियों के हृदयों में निवास करता है।

(शेषांग पृष्ठ २२ का)

कबहुँक बल को हेरि बुलावति, इति आंगन खेलौ दोउ भैया।
सूरदास स्वामी की लीला, अति प्रताप बिलसत नंद दैया॥

अर्थ— माता यशोदा श्रीकृष्ण को चलना सिखा रही हैं। जब कृष्ण के पाँव डगमाने लगते हैं तब यशोदा घबड़ाकर (व्याकुल होकर) अपना हाथ उन्हें पकड़ाती हैं। कभी उनका सुन्दर मुख देखने पर हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है और आनन्द से बलैया लेने लगती हैं। वे बलदेव को भी पुकार कर बुला लेती हैं और कहती हैं उनसे कि दोनों भाई मिल कर आंगन में ही खेलो। वह कभी अपने कुलदेवता को मनाती हैं कि मेरा प्यारा बालक श्रीकृष्ण बहुत दिनों तक जिएँ अर्थात्, चिरकाल तक जीवित रहें। सूरदास जी कहते हैं कि सुखों को देनेवाले नन्दराय के बालक अत्यन्त प्रतापी हैं।

अक्सर देखा जाता है कि माताएँ बच्चों को छिपा लेती हैं और फिर कौतुक करते हुए कहती हैं कि भाई यहाँ कोई बच्चा नहीं है।

सूरदास जी भी माता यशोदा को ऐसा करते हुए दिखला रहे हैं

" कबहुँ लै पीछे दुरावती, ह्यायाँ नहीं बनवारि॥

घर में बच्चों को नचाया जाता है और उनको नाचते देख कर अभिभावकों को विशेष आनन्द होता है।

आँगन स्याम नंचावहीं जसुमती नंदरानी॥
तनरि दै दै गावहीं मधुरी मृदुबानी॥

अब श्री कृष्ण जी बड़े हो गये हैं और घर का काम काज भी देखने लगे हैं। ग्वालों के लिये सब से बड़ा काम गाय चराना है। श्री कृष्ण जी गाय चराने जा रहे हैं, उस समय का वर्णन सुनिए—

गोबिंद चलत देखियत नीके॥
ग्वाल गुपाल मंडली राजत कौंधे धरि लए सीके॥
बछरा टेरि धेरि आगैं करि जन-जन सृंग बजाए॥

अर्थात, गोविन्द चलते (वन जाते) समय बड़े सुन्दर दिखायी देते हैं। गोप बालकों की मण्डली के मध्य में वे शोभित हैं उनके काँधेपर छींका है और उसमें भोजन का सामान है। बछड़ों को आगे कर के सबने सींग बजाए।

बच्चे आपस में हँसी मजाक करते हैं उसका वर्णन देखिये—

मैया; मोहि दाऊ बहुत खिझायौ।
मोसों कहत मोल को लीनो तोहि जसुमति कब जायौ॥
कहा कहौं यहि रिसके मारे खेलन हौं नहिं जात।
पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुमरो तात?
गोरे नन्द यसोदा गोरी तुम कत स्याम गात।
चुटकी दै दै ग्वाल नचावत हँसत सबै मुसुकात॥
तू मोहीं को मारन सीखी दाउहिं कबहुं न खीझै।
मोहन को मुखरिस कीये बातैं जसुमति सुनि-सुनि रीझै॥
सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई जनमत ही की धूत।
सूरस्याम मों गोधन की सों हौं माता, तू पूत॥

प्रसंग—यहाँ श्री कृष्ण जी यशोदा से शिकायत कर रहे हैं कि मुझको बलदेव बहुत चिढ़ाया करते हैं।

शब्दार्थ— खिझायौ—तंग किया। जायौ—पैदा किया। चबाई—चंचल, निंदक। जनमत—पैदा होने के समय से ही। गोधन गौ रूपी धन अथवा गायों की कसम।

अर्थ—श्री कृष्ण अपनी माता यशोदा से कहते हैं—हे मां! मुझे बलदेव ने बहुत खिझाया और तंग किया है। मुझ से वे कहते हैं कि तुम मोल लिए गये हो, यशोदा ने तुम्हें कब जन्म दिया? क्या कहूँ इसी

क्रोध के कारण खेलने नहीं जाता। वे बार बार कहते हैं कि कौन तुम्हारी माता है और कौन तुम्हारे पिता ?

नन्द जी का वर्ण गोरा है और यशोदा भी गोरी हैं तो फिर तुम्हारा शरीर श्याम रंग का क्यों है? बलदेव जी इधर तो मुझको ऐसी बातें कह देते हैं और उधर बच्चों को मेरा मजाक उड़ाने को सिखला देते हैं। फिर ग्वाल-बाल चुटकी बजा-बजा कर हँसते हुए मुझे बुद्धु बनाने लगते हैं। तुम भी मुझे ही को मारने लगती हो, बलदेव को कुछ नहीं कहती। यशोदा भगवान श्री कृष्ण के क्रोध पूर्ण मुख को देखकर मनही मन प्रसन्न होती हैं। यशोदा कहती हैं—हे कृष्ण! सुनो! बलदेव बचपन के ही चतुर हैं और निंदक भी। मैं अपनी गायों की शपथ खाकर सच कहती हूँ कि तू मेरा ही पुत्र है और मैं ही तेरी माता हूँ।

ऊपर दिये गये उदाहरणों में आपने बाल-लीला से सम्बन्धित चित्रों को देखा।

खाते, पीते, सोते, उठते, बैठते, घुटनों पर चलते, डगमगा कर चलना सीखते आदि दशाओं में सूरदास जी ने श्री कृष्ण जी को दिखलाया है।

ये सभी वर्णन बड़े स्वाभाविक हैं।

वात्सल्य सम्राट सूरदास जी की सभी रचनाओं का संग्रह मुझे एक जगह नहीं मिला।

छोटी बुद्धि से जो कुछ खोज पाया हूँ उन में से कुछ यहाँ दिये गये हैं।

बड़ी बुद्धि वाले अगर बड़े पैमाने पर खोज कर बाल-लीला सम्बन्धी रचनाओं को एकत्रित कर देते तो हम बालकों का बड़ा उपकार होता।

मानव शरीर क्यों ?

श्री महावीर 'संतसेवी'

छाग के चमड़े से वाद्ययंत्रादि, गो-वृषभादि के चमड़ों से पदत्राणादि गेंड़े के चमड़े से ढाल और मृग-व्याघ्रादि के चमड़ों से ऋषि-मुनियों के आसन बनते हैं; किन्तु आपने अपने लिये भी सोचा है कि आप के चमड़े का क्या होगा ? कुछ भी नहीं। इसलीये तो—

"या देही का गर्व न कीजे स्यार काग गिध खइहैं।
तीन नाम तन बिष्टा कृम होय नातर खाक उड़इहैं॥"

यह शरीर स्यार, काग और गृद्धादि का भोजन होगा। जलकर भस्मसात् या खाक, सड़कर बिष्टावत् और फिर उससे कीड़े उद्भूत होंगे। और क्या होगा? संत कबीर के शब्दों में—

"कबीर गर्व न कीजिये, चाम लपेटे हाड़।
हयवर ऊपर छत्र तर, तेभी देवैं गाड़॥
कबीर गर्व न कीजिये, ऊँचा देखि अवास।
ऊपर ऊपर हल फिरैं, ढोर चरेंगे घास॥"
"धन यौवन का गर्व न कीजै झूठा पँच रंग चोलरे"॥

"अफसोस! थोड़े ही समय में यह शरीर तुच्छ हालत में बेजान बेकार लट्ठे की तरह पृथ्वी पर पड़ा रह जायगा"—भगवान् बुद्ध।

ऐसी परिस्थिति में हमें क्या करना चाहिये? क्या हथेली पर हथेली रखकर चुपचाप बैठ जाना चाहिये। अथवा मनुष्य शरीर की क्या उपयोगिता है, इसे भी जानना चाहिये। अच्छा, अब आइये और संतवाणी पर विचार कीजिये।

राम चरित मानस में आया है—

"देह धरे कर यहि फल भाई भजिय राम सब काम बिहाई॥"

अर्थात्, हे भाई! मानव शरीर प्राप्त करने का फल यह है कि सांसारिक सभी कामनाओं को छोड़कर पर-

मात्म-भजन करना।

इसी को संत कबीर साहब के शब्दों में हम कहे सकेंगे—

"नहिँ अचाह नहिँ चाहना चरणन लौलीना रे"

अर्थात परमार्थ साधन ❀ में अनिच्छा रहित और स्वार्थ साधन में इच्छा रहित रहते हुए प्रभु चरणों में लौलीन रहना, नरतन का यह पुनीत कर्त्तव्य है।

राम चरित मानस में भगवान श्री रामने मनुष्य शरीर की दुर्लभता और विशेषता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा है कि—

"आकर चारि लाख चौरासी। योनि भ्रमत यह जीव अविनासी॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥
कउहुँक करि करुणा नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥"
"साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ.....सँवारा॥"

अर्थात् यह जीव चार खानियों—स्थावर, उष्मज, अण्डज और पिण्डज तथा चौरासी लक्ष योनियों में भटकते हुए, उन स्थानों की असह्य यातनाओं का सहन करते-करते जब श्रान्त-क्लान्त, दुःख से जर्जर, आकुल एवं अधीर हो स्वधैर्य खो बैठता है; तब ईश्वर अपनी अहैतुकी कृपा से मनुष्य का शरीर देते हैं। जो शरीर सभी साधनाओं का घर मोक्ष का द्वारा है। यह शरीर इतना उत्कृष्ट है कि इसके अंदर सभी विद्या, सभी देवता और सभी तीर्थ विराजमान हैं×। साथही इस पिण्डमें अखिल ब्रह्माण्ड भी है।

"पिण्ड माहिं ब्रह्मण्ड ताहि पार पुनि तेहि लखा"—
तुलसी साहब।

ब्रह्माण्ड लक्षणं सर्वं देह मध्ये व्यवस्थितम्।"
ज्ञान संकलिनी तंत्र

संत कबीर साहब और संत गुरु नानक साहब ने पिण्ड को बून्द और ब्रह्माण्ड को समुद्र की उपमा देते हुए कहा है कि समुद्र में बंद है इसको तो सभी जानते और देखते हैं किन्तु बूंद अर्थात् पिण्ड के अंदर समुद्र अथात् ब्रह्माण्ड है, इसको विरले ही जानते और देखते हैं।

बूंद समानी समुद्र में, यह जाने सब कोय।
समुद्र समाना बूंद में, बूझे विरला कोय॥—
कबीर साहब।

"सागर महि बूंद-बूंद महि सागर, कवणु बुझै बिधि जाणी।
उतभुज चलत आपि करि चीणै आपे तत्तु पछाणै॥"
गुरु नानकदेव।

इतना ही नहीं, गुरु नानक देव जीने तो बताया है कि इस शरीर रूप गुफा में अखुट भण्डार भरा हुआ है और परम प्रभु परमात्मा भी इस शरीर में विराजमान हैं।

इस गुफा महि अखुट भण्डारा।
तिसु बिचि बसै हरि अलख अपारा॥

संत कबीर साहब ने कहा है, यह शरीर रूप घर देखने के लिये तो साढ़ेतीन हाथ का अथवा अधिक-से अधिक पौने चार हाथ का है+, लेकिन इसकी गहराई महासमुद्र से भी अत्यधिक है। क्योंकि समुद्र का तो थाह है और यह शरीर अथाह है, लेकिन जो इसमें डुबकी लगाता है वह बहुमूल्य रत्नराज—परमात्मा—को पाता है।

"काया बड़े समुद्र केरो, थाह न पावै कोइ।
मन मरि जैहैं डूबिके हो, मानिक लावै सोइ॥"
संत कबीर साहब

इस प्रकार यह शरीर जलचर, थलचर, और नभचर को तो कौन कहे, देव शरीर से भी बढ़कर है। साथही, साधन धाम मोक्षकर द्वारा' कहकर भगवान श्री राम ने इसको और भी उत्कृष्ट बना दिया है।

❀ राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा॥
सकल विकार रहित गत भेदा। कहि नित नेति निरूपहिं वेदा॥ रा० च० मा०।

× देहस्थाः सर्व विद्याश्च देहस्थाः सर्व देवताः। देहस्थाः सर्व तीर्थानि गुरु वाक्येन लभ्यते॥" ज्ञान संकलिनी तंत्र।

+ "कहा चुनावै मेड़िया लंबी भीति उसारि। घर तो साढ़े तीन हथ, घना तो पौने चार॥" कबीर साखी संग्रह।

इसलिये चाहे किसी भी प्रकार की साधना अथवा किसी प्रकार का ज्ञान—आधिभौतिक वा आध्यात्मिक—वह सभी शरीर में सुलभ है ? और जबकि इस शरीर में परम प्रभु परमात्मा निवास करते हैं, तब उनके स्वरूप की अपरोक्षानुभूति भी अन्य शरीरों में कैसे संभव है ? अर्थात, परमात्म स्वरूप प्राप्ति भी इसी में पूर्ण रूपेण अपेक्षित है । इसीलिये इस शरीर की इतनी महत्ता है और इन्हीं कारणों से मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम भी अपने मुखार विन्द से बिना किसी हिचकिचाहट के सुस्पष्ट कह देते हैं:—

" बड़े भाग मानुष तनु पावा ।
सुर दुर्लभ सब ग्रँथहि गावा ॥"

ऐसी परिस्थिति में मनुष्य यदि देव देह वा देवलोक वा देव रिझावन के लिये यत्न करे तो विचारवान सहज ही समझ सकते हैं वह अपने कितने बड़े लाभ की उपेक्षा कर कितनी बड़ी क्षति की ओर अग्रसर हो रहा है । इसलिये तो गो० तुलसी दास जी महाराज ने साफ ही कहा है—

" देव दनुज मुनि नाग मनुज सब माया बिवस बिचारे ।
इनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे ॥
विनयपत्रिका ।

उन्नीसवीं शताब्दी में एक महात्मा हो गये हैं, जिनका नाम था तुलसी साहब । देव शरीर एवं देवलोक वासियों की अपेक्षा मानव शरीर की उत्कृष्टता बतलाते हुए वे कहते हैं—

" नरतन दुर्लभ देव को सब कोई कहै पुकार ॥
सब कोई कहै पुकार देव देही नहिं पावै ।
ऐसे भूरख लोग स्वर्ग की आश लगावै ॥
पुण्य छीण सोइ देव स्वर्ग से नरक में आवै ॥
भरमे चारिउ खानि पुण्य कहि ताहि रिझावै ॥
तुलसी सतमत तत गहे स्वर्ग पर करे खखार ।
नरतन दुर्लभ देव को सब कोइ कहै पुकार ॥
तुलसी साहब की शब्दावली ।

कवि हृदय स्वाभाविक ही भावुक होता है । इनके कहने का ढंग निराला एवं मर्म स्पर्शी होता है । अत एव उनके काव्य कला गाम्भीर्य से प्रभावित हुए बिना जन साधारण बच नहीं सकता । संतो के अनुभव ज्ञान से अपने अनुमान ज्ञान को मिलाकर मानो ऐक्य की स्थापना कर देते हैं । कैसी अच्छी उक्ति है उनकी उनका कहना है मनुष्य शरीर बहुत दुर्लभ है । इसको प्राप्त करके मनुष्य को चाहिये कि गुरु प्रदत्त मंत्र का जप प्रति श्वास में करे । परमात्मा प्रेम की ज्वाला को प्रज्वलित करके पाप के बीज को भूनकर भस्म कर डाले और दुःखभंजन-निरंजन (माया रहित) परमात्मा के नाम को भूलकर भी न भूले अर्थात, सतत स्मरण करता रहे, तभी मानव जन्म सार्थक है ।

अति दुर्लभ है तन मानुष को यह पारस ज्ञान विचारिये जी ।
गुरुमंत्र दियो जो दया करके सोइ श्वास में श्वास उचारिये जी ॥
प्रभु प्रीति की ज्वाल प्रज्वाल करो अरु पाप के बीज को जारियेजी
दुख भंजन नाम निरंजन को कबहूँ मति भूल बिसारिये जी ॥

हमारे राष्ट्र पिता पूज्य बापू (गांधी) जी ने—मनुष्य अवतार किसलिये हुआ तथा हम में और पशु में क्या अंतर है ?—"पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि—हमारा मानव अवतार इसलिये हुआ कि हमारे अंतर में जो ईश्वर बसता है, उसका साक्षात्कार हम कर सकें । पशुओं और हम में असली अंतर यही है" —"गांधी वाणी"

मनुष्य अपनी वाणी द्वारा भावाभिव्यक्ति कर सकता है—सदाचारी बन परमात्म स्वरूप का अपरोक्ष